SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

हिंदी फिल्मों पर गाँधी के अछूतोद्धार का प्रभाव

अमरेश कुमार, शोधार्थी, हिंदी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
अमरेश कुमार, शोधार्थी, हिंदी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया,
नई दिल्ली, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 25/09/2020
Revised on : -----
Accepted on : 30/09/2020
Plagiarism : 01% on 26/09/2020

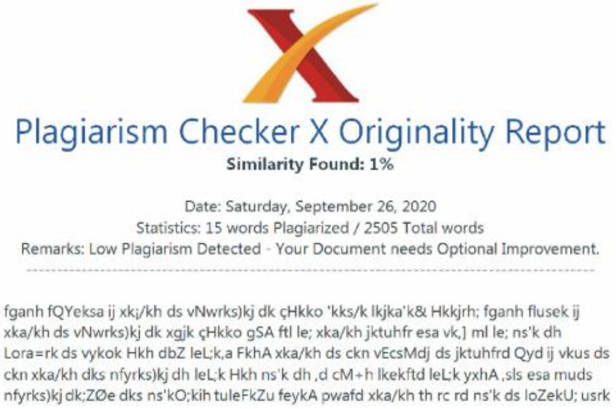
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Saturday, September 26, 2020
Statistics: 15 words Plagiarized / 2505 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

fganh fQYeksa ij xk;/kh ds vNwrks)kj dk çHkko 'kks/k lkjka'k& Hkkjrh; fganh flusek ij xka/kh ds vNwrks)kj dk xgjk çHkko gSA ftl le; xka/kh jktuhfr esa vk,] ml le; ns'k dh Lora=rk ds vykok Hkh dbZ leL;k,a FkhA xka/kh ds ckn vEcsMdj ds jktuhfrd Qyd ij vkus ds ckn xka/kh dks nfyrks)kj dh leL;k Hkh ns'k dh ,d cM+h lkekftd leL;k yxhA ,sls esa muds nfyrks)kj dk;ZØe dks ns'kO;kih tuleFkZu feykA pwafd xka/kh th rc rd ns'k ds loZekU; usrk

शोध सार

भारतीय हिंदी सिनेमा पर गांधी के अछूतोद्धार का गहरा प्रभाव है। जिस समय गांधी राजनीति में आए, उस समय देश की स्वतंत्रता के अलावा भी कई समस्याएं थी। गांधी के बाद अम्बेडकर के राजनीतिक फलक पर आने के बाद गांधी को दलितोद्धार की समस्या भी देश की एक बड़ी सामाजिक समस्या लगी। ऐसे में उनके दलितोद्धार कार्यक्रम को देशव्यापी जनसमर्थन मिला। चूंकि गांधी जी तब तक देश के सर्वमान्य नेता के रूप में उभर चुके थे। ऐसे में नए–नए उभर रहे सिनेमा संसार पर भी इसका प्रभाव पड़ना लाजिमी था। 'अछूत कन्या', 'अछूत', 'नीचा नगर', 'सुजाता', 'परख' जैसे सिनेमा का निर्माण गांधीवादी दर्शन के आधार पर ही हुआ है। हालांकि आधुनिक दलित विमर्श की कसौटी पर गांधी के दलित संबंधी विचार खरे नहीं उतरते हैं, फिर भी उस दौर में जिस प्रकार की सामाजिक स्थिति थी, ऐसे में गांधी के विचारों को पूर्णतः खारिज नहीं किया जा सकता है।

मुख्य शब्द

फिल्म, गांधी, अछूतोद्धार, दलित, अस्पृश्यता।

बीसवीं शताब्दी के भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलनों पर महात्मा गाँधी का प्रभाव निसंदेह अविस्मरणीय है। 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को गाँधी ने अलग दिशा दी, जिसका प्रभाव आगे आने वाले आन्दोलनों पर पड़ा। स्वतंत्रता आन्दोलनों की मुख्य रणनीति में आन्दोलनों के बीच रचनात्मक कार्य गाँधी की विशेषता थी। कोई भी आन्दोलन बहुत लंबे समय तक नहीं चलाया जा सकता है। गाँधी जी ने आन्दोलनों की जो परिकल्पना की थी उसमें उनका मानना था कि "जनान्दोलनों का चरित्र ही ऐसा होता है कि उसे अनिश्चित काल तक या लंबे समय तक लगातार नहीं चलाया जा सकता है, उसमें देर–सवेर

ठहराव आता ही है। जनान्दोलनों को अल्पकालिक होना चाहिए। दो आन्दोलनों के बीच विश्राम और तैयारी का वक्त मिलना चाहिए ताकि संघर्ष के अगले दौर के लिए शक्ति संजोई जा सके।''[1] आन्दोलनों के अंतराल में गाँधी जी ने जिस प्रकार के रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहन दिया उसमें शराबबंदी, शिक्षा का भारतीयकरण, खादी कपड़े को बढ़ावा देना एवं अस्पृश्यता उन्मूलन प्रमुख है।

1917 ई० तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समाज सुधार के मुद्दों से प्रमुखता से नहीं जुड़ी थी। कांग्रेस मूल रूप से अंग्रेजों से राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई लड़ रही थी। गाँधी इस राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई में जनता को भी शामिल करना चाहते थे। इसके लिए पहले सामाजिक कुरीतियों के प्रति आवाज उठाना आवश्यक था। 1917 में कांग्रेस ने प्रस्ताव पास कर जनता से सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने की अपील की परंतु कुरीतियों के खिलाफ कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बनाया गया। लेकिन गाँधी जी ने छुआछूत के खिलाफ आवाज उठाई। इस छुआछूत के खिलाफ संघर्ष को वे स्वतंत्रता आन्दोलन के संघर्ष से कम नहीं मानते थे। गाँधी जी के प्रयासों से ही कांग्रेस ने 1923 ई० में छुआछूत को खत्म करने के लिए ठोस कदम उठाने का फैसला किया।

महात्मा गाँधी अछूतोद्धार को स्वराज का एक अंग मानते थे। उनका मानना था कि बिना अछूतोद्धार के मिली आजादी अधूरी आजादी होगी। गाँधी जी ने अछूत समझी जाने वाली अलग–अलग जातियों को हरिजन नाम देकर उन्हें वैचारिक रूप से संगठित करने का प्रयास किया। साथ ही उन्होंने 'हरिजन' नाम से एक पत्र भी निकाला जिसमें सामाजिक बुराई व छुआछूत को खत्म करने के लिए लोगों को नियमित लेख लिखकर जागरूक किया करते थे। ''हरिजनों के उद्धार के लिए तथा छुआछूत–निवारण के कार्य के लिए गाँधीजी ने अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया। वे अछूतोद्धार को स्वराज्य का अंग मानते थे। सन् 1930 से 1940 तक वे अछूतोद्धार के कार्यक्रम में लगे रहे और इसके लिए उन्होंने सात बार अनशन किया। गाँधीजी मानव समाज को अलग–अलग जातियों एवं धर्मों में बँटे होने पर भी एक इकाई की तरह मानते थे। उनका विश्वास था कि संसार के सभी मानव बराबर हैं, सबको उन्नति का अधिकार है। अगर अपनी भलाई के साथ दूसरों की भलाई का भी ख्याल रखा जाए तो इस समाज को हम आदर्श समाज कह सकते हैं।''[2] हालांकि कई दलित आलोचक गाँधी के अछूतोद्धार से सहमत नहीं होते हैं। क्योंकि गाँधी जहाँ एकतरफ सामाजिक भेदभाव मिटाने की बात करते थे वहीं दूसरी तरफ वह हिंदू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन भी करते थे। इसके विपरित अम्बेडकर अछूतोद्धार के संबंध में क्रांतिकारी विचार रखते हुए 'जाति का विनाश' की बात करते थे। हालांकि समकालीन विमर्शों को देखते हुए अछूतोद्धार के संबंध में अम्बेडकर की विचारधारा को ही सर्वोपरि रखा जाता है लेकिन बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों के बीच अछूतोद्धार के संबंध में गाँधीवादी विचारधारा को सिरे से खारिज भी नहीं किया जा सकता है।

1930 के दशक में गाँधी जी का अछूतोद्धार कार्यक्रम जोरों पर था। इस अछूतोद्धार कार्यक्रम का समाज पर साकारात्मक प्रभाव भी पड़ रहा था। इस समय हिंदी फिल्म उद्योग में भी विचारधाराओं के आधार पर फिल्में बनने लगी थी। ग्रामीण समाज की समस्याओं पर, मजदूरों की समस्याओं आदि पर फिल्में बनने लगी। इससे पूर्व तक धार्मिक कथाओं को आधार बनाकर फिल्में बनाई जा रही थी। गाँधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम के बाद फिल्म उद्योग ने भी इस पर आधारित फिल्में बनाना आरंभ किया। हालांकि इन फिल्मों को आज के दलित विमर्श विचारधारा की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता है परंतु समय सापेक्ष इसके महत्व से इंकार भी नहीं किया जा सकता है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दलित विषयक समस्याओं को लेकर जितनी भी फिल्में बनी वह मुख्यतः सहानुभूति व दयाभाव पर आधारित फिल्में थीं। इन फिल्मों में जाति व्यवस्था या वर्णाश्रम व्यवस्था के साथ किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की गई थी। चूंकि जाति व वर्णाश्रम व्यवस्था व्यवस्था उस समय के समाज में एक बड़ी चीज थी और इससे किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ फिल्म के लिए घाटे का सौदा हो सकती थी। फिल्म बनाना एक महंगा तकनीकी काम है जिसमें यदि मुनाफा न हो तो फिल्मकार अगली फिल्म बनाने लायक नहीं रह जाएगा। ऐसे में इन विषयों पर जिसने भी हाथ अजमाया उसमें ज्यादातर ने गाँधीवादी तरीके से ही फिल्में बनाई। दलित व अस्पृश्यों के लिए दया व सहानुभूति पर बनी ये फिल्में किसी भी सामाजिक रूढ़िवादी परंपरा को तोड़ती नहीं थी इसलिए यह दर्शकों में करूणा व दयाभाव जगाकर सफल हो जाती थी। हालांकि इससे मूल दलित समस्या के प्रश्नों पर किसी प्रकार का कोई हल नहीं मिला।

तीस के दशक से ही ऐतिहासिक सामाजिक मान्यताओं पर आधारित ऐसी फिल्में बनने लगी थी जिसमें दलित विषयक समस्याओं को उठाया गया था। 1934 में बंगाल के संत चंडीदास पर नितिन बोस ने 'चंडीदास' नाम की फिल्म बनाई। इसके बाद वी. शांताराम ने 1935 में महाराष्ट्र के संत एकनाथ के जीवन पर 'धर्मात्मा' नाम की फिल्म बनाई। इसे हिंदी व मराठी में एक साथ बनाया गया था। चूंकि इन दोनों फिल्में के कथानक को सामाजिक मान्यता मिली हुई थी इसलिए फिल्म 'चंडीदास' में जहाँ निम्न वर्ग की रानी धोबिन के साथ चंडीदास का मिलन संभव होता है वहीं 'धर्मात्मा' में महात्मा एकनाथ अछूतों को भोजन कराते हुए दिखते हैं। सामाजिक मान्यता के कारण ही ये फिल्में चलीं और दर्शकों ने इसे पसंद भी किया।

1936 में फ्रेंज ऑस्टिन ने 'अछूत कन्या' नामक फिल्म बनाई। इस फिल्म में दलित विषयक समस्या को विशुद्ध गाँधीवादी तरीके से हल किया गया था। फिल्म दया व सहानुभूति को पूर्णतया भुनाने में सक्षम हुई है।

इससे पूर्व 1930–31 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद गाँधी जी पुनः रचनात्मक कार्यों में जुट गए थे। 1932 में अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल की माँग का गाँधी ने विरोध किया। इस विरोध के लिए गाँधी आमरण अनशन पर बैठ गए। इसके बाद विभिन्न राजनीतिक विचारधारा के लोगों ने इस पर मंथन किया और अंततः गाँधी के साथ अम्बेडकर का समझौता हुआ जिसे 'पूना समझौता' के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत अछूतों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। पूना समझौते के बाद गाँधी जी सारा काम छोड़कर छूआछूत निवारण कार्यक्रम में जुट गए। भारतीय जनमानस को अछूतोद्धार के लिए तैयार करने के लिए गाँधी जी ने देश भर का दौरा किया। ''7 नवम्बर 1933 को वर्धा से गाँधी जी ने अपनी 'हरिजन यात्रा' आरंभ की, 29 जुलाई 1934 तक वे नौ महीने देश का दौरा करते रहे। उन्होंने बीस हजार किलोमीटर की यात्रा तय की। छुआछूत उन्मूलन के लिए जबरदस्त प्रचार किया। सामाजिक कार्यकर्ताओं से सब कुछ छोड़कर हरिजनों के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक उत्थान के लिए काम करने की अपील की। दलित वर्गों को 'हरिजन' नाम गाँधीजी ने ही दिया था।''[3] गाँधी जी के इस हरिजन आन्दोलन का सामाजिक प्रतिक्रियावादी व कट्टरपंथी हिंदुओं ने पुरजोर विरोध किया। उन पर हिंदूवाद पर हमले के भी आरोप लगे। लेकिन इसके विपरित बहुत से कांग्रेसी कार्यकर्ता गाँधीजी के बताए मार्गों का अनुसरण भी करने लगे। जिसका सकारात्मक प्रभाव समाज पर भी पड़ा। फिल्म उद्योग ने भी इस मसले पर फिल्में बनानी शुरू कर दी।

'अछूत कन्या' में फ्रेंज आस्टिन के एक दलित कन्या का प्रेम एक सवर्ण युवक से दिखा कर उस समय की सामाजिक व रूढ़िवादी मान्यताओं पर प्रहार किया था। दलित युवती और सवर्ण युवक का प्रेम तो है फिल्म में लेकिन यह प्रेम समाज में स्वीकार्य नहीं है। सिर्फ अलग वर्णों के बीच प्रेम दिखा देने भर से ही अछूत समाज की किसी समस्या का समाधान नहीं हो जाता। विमर्शकार इसे दलित समाज के साथ छलावा समझते हैं। नवल किशोर शर्मा फिल्म 'अछूत कन्या' के बारे में लिखते हैं– ''यह फिल्मकार की चतुराई है कि दलित विषय को छूने के बावजूद इस फिल्म में कोई ऐसा दृश्य नहीं है जो अस्पृश्यता को प्रकाश में लाता हो जिसकी बड़ी वजह शायद यही रही होगी कि तत्कालीन समाज में फिल्मों के अधिकांश दर्शक सवर्ण हुआ करते थे जिनकी नाराजगी फिल्म के कारोबार को नुकसान पहुँचा सकती थी।''[4] फिल्म 'अछूत कन्या' बिलकुल गाँधीवादी विचारधारा का समर्थन करती है। इसमें फिल्मकार अछूतों व सवर्णों के बीच प्रेम और भाईचारा तो दिखाते हैं परंतु आपसी खान–पान व वैवाहिक संबंधों को सिरे से नकारते हैं। अछूत युवती के बीमार पिता से स्नेह दर्शाते हुए जब प्रताप का पिता उसे अपने घर लाने की बात करता है तो प्रताप की माँ कहती है– ''बेचारा बीमार है, अछूत भी तो आदमी ही होते हैं..... फिर हमें उसके साथ खाना–पीना तो है ही नहीं.....।'' फिल्म में ऐसे कई दृश्य और संवाद हैं जो गाँधी के अछूतोद्धार कार्यक्रम से प्रेरित जान पड़ते हैं।

इस दौरान बनने वाली ज्यादातर फिल्मों ने दलित समस्या को गाँधीवादी तरीके से ही दिखाया। इन फिल्मों में चंदूलाल शाह की 'अछूत' (1940), एन. आर. आचार्य की 'नया संसार' (1941), महबूब खान की 'रोटी' (1942), रामचंद्र ठाकुर की 'गरीब' (1946), चेतन आनंद की 'नीचा नगर' (1946), महेश कौल की 'गोपीनाथ' (1948) आदि चालीस के दशक की महत्वपूर्ण फिल्में हैं। इन सभी फिल्मों में समस्या का कोई महत्वपूर्ण समाधान न सुझा कर

अंततः क्रूर और नकारात्मक चरित्रों के ह्रदय परिवर्तन से समस्या को सुलझाते दिखाया गया है। गाँधी जी के महत्वपूर्ण अस्त्रों में यह भी एक अस्त्र था कि हमारा समर्पण अंततः गलत मनुष्यों का ह्रदय परिवर्तन कर, उसमें सद्वृति जगाकर उन्हें सच्चाई, ईमानदारी व भाईचारे के मार्ग पर ले आएगा।

1946 में चेतन आनंद की फिल्म 'नीचा नगर' ऊँचे और नीचे नगर को प्रतीक के तौर पर प्रयोग करते हुए समाज के ऊँच–नीच की समस्या को रेखांकित करते हैं। फिल्म में ऊँचा नगर का नाला नीचा नगर की तरफ मोड़ने की बात होती है क्योंकि ऊँचे नगर की तरफ ऊँचे लोग रहते हैं और उन्हें और घर बनाने के लिए अत्यधिक जमीन चाहिए, जो उन्हें नाले को नीचा नगर की तरफ बहाकर मिलने वाली है। इस समस्या के माध्यम से फिल्म में उच्च व निम्न वर्ग की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। फिल्म में अंततः नीचा नगर वालों की जीत होती है। इस जीत को गाँधी के असत्य पर सत्य की विजय के रूप में देखा जा सकता है।

1950 के दशक में भी ऐसी कई फिल्में बनी जो गाँधी के अछूतोद्धार को आधार बनाकर बनाई गई थीं। इन फिल्मों में मुख्य रूप से प्रकाश अरोड़ा की फिल्म 'बूट पालिश' (1954), चेतन आनंद की 'अर्पण' (1957), विमल राय की 'सुजाता' (1959) और 'परख' (1960) आई। फिल्म 'बूट पालिश' श्रम की महत्ता को रेखांकित करता है। गाँधी की विचारधारा कि कोई भी काम छोटा नहीं होता है, से प्रेरित यह फिल्म ईमानदारी और मेहनत की कमाई को भिक्षावृति से श्रेष्ठ मानता है। राजकपूर अभिनीत यह फिल्म दलितों के आत्मसम्मान को प्रेरित करने वाला है। ''फिल्म 'बूट पॉलिश' में निश्चय ही कवि शैलेन्द्र की संगत में रहे निर्देशक राजकपूर, परजीवी एवं भिक्षाजीवी ब्राह्मणवाद के चंगुल से श्रमजीवी दलितों को दूर रहने का महान संदेश स्पष्ट रूप से देते प्रतीत होते हैं।''[5]

इस संदर्भ में विमल राय की फिल्म 'सुजाता' कालजयी फिल्म है। अभिनेत्री नूतन द्वारा सुजाता का किरदार जिस तरह से निभाया गया है उसने इस फिल्म को जीवंत कर दिया है। फिल्म में अछूतोद्धार, प्रेम और विवाह जैसे मुद्दे को गाँधीवादी तरीके से दिखाया गया है। अछूत किरदार सुजाता को प्रेम, समर्पण और त्याग की मूर्ति के रूप में प्रस्तुत कर फिल्मकार उनसे घृणा करने वालों का ह्रदय परिवर्तन करा देता है। हालांकि यह फिल्म अपनी पूर्ववर्ती फिल्मों से एक कदम आगे है परंतु इसे आधुनिक दलित विमर्श की श्रेणी में इसे महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है। बहुत हद तक यह फिल्म भी अपने पूर्ववर्ती फिल्मों की ही तरह दया भाव पर ही आधारित है। ''वंचितों के अधिकार व संघर्ष की जगह अछूतोद्धार जैसी सहानुभूति व दया का भाव पक्ष दलित अस्मिता पर पूरी तरह हावी है, जो इसके प्रसिद्ध गीत सुनु मेरे बंधु रे, सुनु मेरे मितवा....से स्पष्ट है।''[6] इसी वर्ष आई विमल राय की फिल्म 'परख'। यह फिल्म लोकतंत्र की चुनावी प्रक्रिया में धनबल, बाहुबल व धर्म के दुरुपयोग पर तंज कसती है। साथ ही फिल्म अस्पृश्यता व जातिवाद जैसे मुद्दे को भी उठाती है।

1961 में नितिन बोस की फिल्म 'गंगा–जमना' आई। यह फिल्म मूल रूप से अछूतोद्धार की समस्या पर तो नहीं बनी थी लेकिन फिल्म के एक अछूत पात्र कालू चमार के माध्यम से गाँधी के संदेश को ही प्रसारित करने का कार्य किया गया है। फिल्म में कालू के चरित्र को गाँधीजी के प्रतिरूप में फिल्माया गया है।

साठ के दशक के बाद हिंदी सिनेमा में समांतर सिनेमा की एक नई धारा का प्रवेश हुआ। समांतर सिनेमा के प्रभाव से हिंदी सिनेमा में कई तरह के बदलाव आए। इसमें विषय–वस्तु से लेकर फिल्मांकन तक में बदलाव परिलक्षित हुए। साठ के दशक में भी दलित समस्या पर कई फिल्में बनीं। इन फिल्मों पर भी नए सिनेमा का प्रभाव देखा जा सकता है। इन फिल्मों में निशांत, मृगया, मंथन, आक्रोश, सद्गति, आरोहण, दामुल, पार, देवशिशु, दीक्षा, समर, मोहनदास जैसी फिल्में प्रमुख हैं। ये फिल्में अपने पूर्ववर्ती फिल्मों से काफी अलग है। इनमें दलित समस्या को उसके यथार्थ रूप में फिल्माया गया है। इन फिल्मों में दलित पात्र सहानुभूति व दया के पात्र नहीं हैं। वे अपनी अस्मिता की तलाश में हैं और आत्मसम्मान का जीवन जीना चाहते हैं।

साठ के दशक के बाद भले सिनेमा में भले बदलाव देखने को मिले हों परंतु इस बदलाव की नींव इनकी पूर्ववर्ती फिल्में ही हैं। पूर्ववर्ती फिल्मों में जिस प्रकार अछूतोद्धार को गाँधीवादी तरीके से दिखाया गया है वह समय सापेक्ष राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए क्रांतिकारी कही जा सकती है। गाँधी के अछूतोद्धार से प्रेरित उस समय बनने वाली फिल्मों ने भारतीय जनमानस पर सकारात्मक प्रभाव डाला। हालांकि इसमें गाँधी के

अछूतोद्धार आन्दोलन का ज्यादा महत्व है लेकिन जनमानस तक प्रचार के तौर पर फिल्मों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि बींसवी सदी के हिंदी सिनेमा में दलित मुद्दों पर बनने वाली फिल्मों पर गांधीवादी दर्शन का व्यापक प्रभाव है। जातिबंधन व अंधविश्वास में लिपटे समाज के लिए गांधी की विचारधारा इससे उबरने में काफी मददगार साबित हुई। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक हिंदी फिल्मों की पहुँच कस्बों तक होने लगी थी, ऐसे में गांधी दर्शन पर बने दलितोद्धार संबंधी फिल्मों ने भारतीय जनमानस पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ा। आधुनिक दलित विमर्श के संदर्भ में भी गांधी के दलितोद्धार संबंधी विचारों को नकारा नहीं जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. *चंद्रा, बिपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–10, पृ. सं. 486।*
2. *अग्रवाल, सुरेन्द्र प्रसाद, महात्मा गांधी–विचार वीथिका, कॉसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली–59, नृ.सं. 40।*
3. *चंद्रा, बिपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–10, पृ. सं. 277।*
4. *गौरीनाथ (संपा.)(2019), हिंदी सिनेमा में हाशिए का समाज, अंतिका प्रकाशन प्रा0 लि0 गाजियाबाद, उ0 प्र0, पृ.सं. 54।*
5. *गौतम, एस. एस., (संपा.), हिंदी सिनेमा और दलित, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली–32, पृ.सं. 18।*
6. *गौरीनाथ (संपा.)(2019), हिंदी सिनेमा में हाषिए का समाज, अंतिका प्रकाशन प्रा0 लि0 गाजियाबाद, उ0 प्र0, पृ.सं. 41।*

****